बेहिसाब वर्चस्व आँख में अंगुली डाल कर बताता है कि भारत में हजारों वर्ष पूर्व की भांति सामाजिक अन्याय की धारा आज भी जोर-शोर से प्रवाहमान है।

शैक्षणिक जगत में हिन्दू आरक्षणवादियों का षड्यंत्र–जहाँ तक शैक्षणिक जगत का सवाल है,अध्ययन-अध्यापन में रिजर्वेशन के चलते आज भले ही दलित,आदिवासी और पिछड़ों के लिए शिक्षालयों के द्वार निषिद्ध न हो, किन्तु सचाई यह है कि बहुजनों के लिए आज भी अध्ययन-अध्यापन का माहौल पूरी तरह प्रतिकूल है। खासकर विशेषाधिकारयुक्त वर्ग के वर्चस्व के चलते वहां इतना गहरा भेदभाव पसरा है कि उस घुटन का सामना करने में व्यर्थ होकर रोहित वेमुला जैसे आधुनिक एकलव्य या तो शिक्षालयों को अलविदा कहने के लिए मजबूर हो जाते हैं या फांसी के फंदे पर लटककर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर लेते हैं। गाँधी जी कहा करते थे, शुद्रातिशूद्रों को उतनी ही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए जिससे वे अपने शुद्रत्व अर्थात तीसरे-चौथे दर्जे का काम ठीक से अंजाम दे सकें। कहना न होगा शिक्षालयों पर भी मंडल की छाया पड़ गयी है। जिस तरह मंडल की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद सामाजिक अन्यायकारी वर्गों की ओर से आरक्षण को कागजों तक सिमटाये रखने का षडयंत्र शुरू हुआ, कुछ वैसा ही शिक्षा के क्षेत्र में हो रहा है। विशेषाधिकारयुक्त तबका गुणवती शिक्षा से बहुजनों को दूर धकेलने के साथ ऐसा षडयंत्र कर रहा है कि बहुजन उच्च शिक्षा का मुंह ही न देख सकें। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर और एसोसिएट पदों पर औसतन 80-90 प्रतिशत सवर्णों की उपस्थिति उच्च शिक्षा में बहुजनों की करुणतर स्थिति की गवाही दे ही रही थी; अब वे कुछ ऐसा षडयंत्र कर रहे हैं कि असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर भी किसी बहुजन को देखना सपना बन जायेगा। कहा जा सकता है जो शिक्षा शक्ति के स्रोतों को हस्तगत करने का सबसे प्रभावी माध्यम है,उससे प्राचीन भारत की भांति ही आज फिर बहुजनों को वंचित करने का एक भयावह षडयंत्र जारी है। कुल मिलाकर उपरोक्त तथ्य यह गवाही देते हैं कि आधुनिक विश्व में भी सर्वाधिक अन्याय की शिकार विशालतम आबादी की उपस्थिति भारत में ही है। यह आबादी इस अन्याय की गुफा से निकलने के लिए बुरी तरह छटपटा रही है।

भीषण विषमता के चलते : क्रांति की सर्वाधिक संभावना भारत में- भारत में सामाजिक अन्याय की शिकार विश्व की विशालतम आबादी को जिस तरह विषमता का शिकार होकर जीना पड़ रहा है, उससे यहां विशिष्ट क्रन्तिकारी आन्दोलन पनपने की 'निश्चित दशाएं' साफ दृष्टिगोचर होने लगीं हैं। समाज विज्ञानियों के मुताबिक क्रांतिकारी आन्दोलन मुख्यतः असंतोष,अन्याय,उत्पादन के साधनों का असमान बंटवारा तथा उच्च व निम्न वर्ग के व्याप्त खाई के फलस्वरूप होता है। सरल शब्दों में ऐसे आन्दोलन आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी की

कोख से जन्म लेते हैं और तमाम अध्ययन साबित करते हैं कि भारत जैसी भीषण गैर-बराबरी पूरे विश्व में कहीं है ही नहीं। इस क्रान्तिकारी आन्दोलन में बहुजनों में पनपता 'सापेक्षिक वंचना'(Relative deprivation) का भाव आग में घी का काम करता है,जो वर्तमान भारत में दिख रहा है। क्रांति का अध्ययन करने वाले तमाम समाज विज्ञानियों के मुताबिक जब समाज में सापेक्षिक वंचना का भाव पनपने लगता है,तब आन्दोलन की चिंगारी फूट पड़ती है। समाज विज्ञानियों के मुताबिक,' दूसरे लोगों और समूहों के संदर्भ में जब कोई समूह या व्यक्ति किसी वस्तु से वंचित हो जाता है तो वह सापेक्षिक वंचना है : दूसरे शब्दों में जब दूसरे वंचित नहीं हैं तब हम क्यों रहें!' जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हजारों साल के विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न वर्ग के शक्ति के तमाम स्रोतों पर ही 80-85 प्रतिशत कब्जे ने बहुजनों में सापेक्षिक वंचना के अहसास को प्रायः तुंग पर पहुंचा दिया है। और इतिहास गवाह है जब बहुसंख्य वंचितों में यह भाव तुंग पर पहुँच जाता है, तब क्रांतिकारी आन्दोलन भड़कने में देर नहीं लगती। सापेक्षिक वंचना का भाव क्रान्तिकारी आन्दोलन की एक और शर्त पूरी करता दिख रहा है और वह है 'हम-भावना' (we-ness) का तीव्र विकास। कॉमन वंचना ने बहुजनों को शक्तिसंपन्न वर्गों के विरुद्ध 'हम-भावना' से लैस करना शुरू कर दिया है। इस भयावह विषमता का सदव्यवहार कर बहुजन साहित्यकार विशिष्ट आन्दोलन लायक हालात बनाने में जुट गए है।

सामाजिक अन्यामुक्त भारत निर्माण के लिए देश के हुक्मरान करें : अमेरिकी और दक्षिण अफ्रीकी मॉडल का अनुसरण–ऐसे में ऑक्सफाम की ताजी रिपोर्ट देश की एकता-अखंडता और विशेषाधिकारयुक्त वर्गों के लिए निश्चय ही खतरे की घंटी है,इसका संकेत 2015 में ही क्रेडिट सुइसे की रिपोर्ट आने के बाद बाद बहुत से अखबारों द्वारा की गयी इस टिपण्णी-'गैर-बराबरी अक्सर समाज में उथल-पुथल की वजह बनती है। सरकार और सियासी पार्टियों को इस समस्या को गंभीरता से लेना चाहिए। संसाधनों और धन का न्यायपूर्ण बंटवारा कैसे हो, यह सवाल अब प्राथमिक महत्त्व का हो गया है'-ने भी कर दिया था। इस संभावित उथल-पुथल से बचने का एक ही उपाय है : **'सामाजिक अन्यायमुक्त भारत का निर्माण'**। यदि देश के हुक्मरान सामाजिक अन्यायमुक्त भारत के निर्माण के प्रति गंभीर हैं तो जिस तरह अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका ने कभी के नर-पशु (Human-cattle) रहे अश्वेतों को सामाजिक अन्याय के दलदल से निकालने के लिए उन्हें हर प्रकार की नौकरियों, उद्योग-व्यापार, शैक्षिक-सांस्कृतिक, फिल्म-मीडिया में शेयर सुनिश्चित किया, वैसा ही उपक्रम वे भारत में चलायें।

निवेदक
एच.एल. दुसाध
संस्थापक अध्यक्ष : बहुजन डाइवर्सिटी मिशन, दिल्ली

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन

(आर्थिक-सामाजिक गैर-बराबरी के खात्मे का एक अभियान)
केन्द्रीय कार्यालय : B-1,149/9 किशनगढ़, वसंत कुंज
नई दिल्ली-110070, संपर्क : 011-26125973
संस्थापक अध्यक्ष : एच.एल. दुसाध
मो. : 9654816191, E-mail : hl.dusadh@gmail.com

एक अपील

सामाजिक अन्याय मुक्त भारत निर्माण के लिए!

जनवरी 2018 में आई ऑक्सफैम की रिपोर्ट, जिसमें यह बताया गया है कि 1% टॉप के लोगों की दौलत 2016 की 58% से उछल कर एक वर्ष में 73% तक पहुँच गयी है, देश की एकता-अखंडता और विशेषाधिकारयुक्त वर्गों के लिए निश्चय ही खतरे की घंटी है। इसके भयावह परिणामों की ओर संकेत करते हुए ऑक्सफाम इंडिया की सीईओ निशा अग्रवाल ने कहा है–'अरबपतियों की बढ़ती संख्या अच्छी अर्थ व्यस्था का नहीं,खराब होती अर्थ व्यवस्था का संकेत है। जो लोग कठिन परिश्रम करके देश के लिए भोजन उगा रहे हैं, इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण कर रहे हैं, उन्हें अपने बच्चों की फीस भरने, दवा खरीदने और दो वक्त का खाना जुटाने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। अमीर-गरीब के बीच बढ़ती खाई लोकतंत्र को खोखला कर रही है और भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रही है।' बहरहाल यह रिपोर्ट भारत की डेमोक्रसी के लिए तो खतरे की घंटी बजा ही दी है, इससे भी बढ़कर यह सामाजिक अन्यामुक्त भारत निर्माण की राह में उभरी एवरेस्ट सरीखी बाधा से भी अवगत करा दी है। कैसे! इसे समझने के लिए सामाजिक अन्याय की अवधारणा से अवगत होना जरुरी है!

क्या है सामाजिक अन्याय!–वैसे तो सामाजिक अन्याय की कोई निर्दिष्ट परिभाषा नहीं है, किन्तु विभिन्न समाज विज्ञानियों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि नस्ल, लिंग, जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रादि के आधार पर विभाजित समाज के विभिन्न सामाजिक समूहों में से कुछेक का शासकों द्वारा शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनैतिक-शैक्षिक-धार्मिक इत्यादि) से जबरन बहिष्कार ही सामाजिक अन्याय कहलाता है। इस लिहाज से दुनिया में स्त्री के रूप में विद्यमान आधी आबादी सर्वत्र ही सामाजिक अन्याय का शिकार रही है। सर्वाधिक अन्याय के शिकार समुदायों में अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका के अश्वेत तथा भारत

के बहुजन रहे हैं। इनमें भारत के बहुजनों को ही शीर्ष पर रखा जा सकता है।

दलित, आदिवासी और पिछड़ों से युक्त भारत का बहुजन समाज प्राचीन विश्व के उन गिने-चुने समाजों में से एक है जिन्हें जन्मगत कारणों से शक्ति के समस्त स्रोतों से हजारों वर्षों तक बहिष्कृत रखा गया। ऐसा उन्हें सुपरिकल्पित रूप से धर्म के आवरण में लिपटी उस वर्ण- व्यवस्था के प्रावधानों के तहत किया गया जो विशुद्ध रूप से शक्ति के स्रोतों के बंटवारे की व्यवस्था रही। इसमें अध्ययन-अध्यापन, पौरोहित्य, भूस्वामित्व, राज्य संचालन, सैन्य वृत्ति, उद्योग-व्यापारादि सहित गगन स्पर्शी सामाजिक मर्यादा सिर्फ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों से युक्त सवर्णों के मध्य वितरित की गयी। स्व-धर्म पालन के नाम पर कर्म-शुद्धता की अनिवार्यता के फलस्वरूप वर्ण-व्यवस्था ने एक आरक्षण व्यवस्था का रूप ले लिया, जिसे हिन्दू आरक्षण व्यवस्था कहा जा सकता है।

हिन्दू-आरक्षण से बना दो वर्ग : विशेषाधिकार युक्त सुविधाभोगी वर्ग और शक्तिहीन बहुजन समाज–हिन्दू आरक्षण ने चिरस्थाई तौर पर भारत को दो वर्गों में बांट कर रख दिया : एक विशेषाधिकारयुक्त सुविधाभोगी वर्ग और दूसरा शक्तिहीन बहुजन समाज! इस हिन्दू आरक्षण में शक्ति के सारे स्रोत सिर्फ और सिर्फ विशेषाधिकारयुक्त तबकों के लिए आरक्षित रहे। इस कारण जहाँ विशेषाधिकारयुक्त वर्ग चिरकाल के लिए सशक्त तो दलित, आदिवासी और पिछड़े चिरकाल के लिए अशक्त व गुलाम बनने के लिए अभिशप्त हुए। लेकिन दुनिया के दूसरे गुलामों की तुलना में भारत के बहुजनों की स्थिति सबसे बदतर इसलिए हुई क्योंकि उन्हें आर्थिक और राजनीतिक गतिविधियों के साथ ही शैक्षिक और धार्मिक गतिविधियों तक से भी बहिष्कृत रहना पड़ा। इतिहास गवाह है कि मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में किसी भी समुदाय के लिए शैक्षिक और धार्मिक गतिविधियां धर्मादेशों द्वारा निषिद्ध नहीं की गयीं, जैसा हिन्दू आरक्षण-व्यवस्था के तहत बहुजनों के लिए किया गया। यही नहीं इसमें उन्हें अच्छा नाम तक भी रखने का अधिकार नहीं रहा। इनमें सबसे बदतर स्थिति दलितों की रही : वे गुलामों के गुलाम रहे। इन्ही गुलामों को गुलामी से निजात दिलाने की चुनौती इतिहास ने डॉ. आंबेडकर के के कन्धों पर सौंपी ,जिसका उन्होंने नायकोचित अंदाज में निर्वहन किया।

मंडलवादी आरक्षण के खिलाफ शत्रु की भूमिका में आये : हिन्दू आरक्षणवादी–अगर जहर की काट जहर से हो सकती है तो हिन्दू आरक्षण की काट आंबेडकरी आरक्षण से हो सकती थी, जो हुई भी। इसी आंबेडकरी आरक्षण से सही मायने में सामाजिक अन्याय के खात्मे की प्रक्रिया शुरू हुई। हिन्दू आरक्षण के चलते जिन सब पेशों को अपनाना अस्पृश्य-आदिवासियों के लिए दुसाहसपूर्ण सपना था, अब वे खूब दुर्लभ नहीं रहे। इससे धीरे-धीरे उनके राष्ट्र की मुख्यधारा से

जुड़ने और सबलीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। संविधान में डॉ. आंबेडकर ने अस्पृश्य-आदिवासियों के लिए आरक्षण सुलभ कराने के साथ धारा 340 का जो प्रावधान किया, उससे परवर्तीकाल में मंडलवादी आरक्षण की शुरुआत हुई, जिससे पिछड़ी जातियों के भी सामाजिक अन्याय से निजात पाने का मार्ग प्रशस्त हुआ। स्वाधीनोत्तर भारत में सामाजिक न्याय के लिहाज से यह भारतीय राज्य द्वारा उठाया बलिष्ठतम कदम था और यही बहुजनों के लिए काल बन गया! मंडलवादी आरक्षण लागू होते ही हिन्दू आरक्षण का सुविधाभोगी तबका एक बार फिर शत्रुतापूर्ण मनोभाव लिए बहुजनों के खिलाफ मुस्तैद हो गया। मंडलवादी आरक्षण के विरोध के घोड़े पर सवार होकर ही भाजपा एकाधिक बार सत्ता में आई और देखते ही देखते अप्रतिरोध्य बन गयी।

मंडल विरोधी नीतियों का भयावह परिणाम–बहरहाल मंडल की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद हिन्दू आरक्षणवादियों द्वारा बहुजनों को नए सिरे से गुलाम बनाने के लिए निजीकरण, उदारीकरण, विनिवेशीकरण इत्यादि का उपक्रम चलाने साथ जो तरह-तरह की साजिशें की गयीं, उसके फलस्वरूप आज भारत का बहुजन समाज एक ऐसे बदहाल व वंचित समुदाय में तब्दील होते जा रहा है,जिसकी मिसाल वर्तमान विश्व में दुर्लभ है। मंडलोत्तर काल में जिस तीव्र विकास को देखते हुए देश के हुक्मरान और अर्थशास्त्री भारत के विश्व महाशक्ति बनने के दावे कर रहे हैं, उस विकास में बहुजनों की भागीदारी नहीं के बराबर रही है, जिसे देखते हुए पूर्व प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह को एकाधिक बार अर्थशास्त्रियों से रचनात्मक सोच की अपील करनी पड़ी थी। अर्थशास्त्री अमर्त्यसेन ने तो साफ कह दिया है कि हम उनसे सहमत नहीं हैं जो कहते हैं कि तेज विकास से गरीबी में कमी आई है। मंडल के बाद बहुजनों को गुलाम बनाने के लिए जो विभिन्न साजिशें हुईं, उसका भयावह परिणाम 2015 में वैश्विक धन बंटवारे पर आई 'क्रेडिट सुइसे' की रिपोर्ट में दिखा, जिसमें बताया गया था कि भारत की टॉप की दस प्रतिशत आबादी के पास 81% धन है। जबकि नीचे की 50 प्रतिशत आबादी 4.1 प्रतिशत धन पर गुजर बसर करने के लिए विवश है। क्रेडिट सुइसे की ही बात को आगे बढ़ाते हुए मार्च 2017 में प्रकाशित मानव विकास सूचकांक की रिपोर्ट में बताया गया कि मानव विकास के मामले में विश्व के 187 देशों में से 131 वें स्थान पर रहने वाला भारत अरबपतियों की संख्या के हिसाब से चौथे स्थान पर आ गया है। रिपोर्ट के अनुसार 2000 के दौरान भारत में सर्वाधिक धनी 1 प्रतिशत आबादी के पास 37 प्रतिशत संपत्ति हुआ करती थी जो 2005 में बढ़कर 42 प्रतिशत, 2010 में 48 प्रतिशत, 2012 में 52 प्रतिशत तथा 2016 में 58.5 प्रतिशत तक पहुँच गयी। रिपोर्ट में यह भी बताया गया था कि पिछले 20 वर्षों में मध्यम वर्ग की तादाद 26 से बढ़कर 58 प्रतिशत तक पहुँच गयी है। 24 जुलाई, 1991 से शुरू हुई भूमंडलीकरण की अर्थनीति के बाद देश में जो अरबपतियों, मध्यमवर्ग

की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है, उसमें बहुजनों की संख्या नगण्य रही।

सामाजिक अन्यायमुक्त देश का आदर्श मॉडल : अमेरिका और द. अफ्रीका–आज की तारीख में सामाजिक अन्याय का शिकार बनाये गए विश्व के बाकी समुदाओं के जीवन में चमत्कारिक बदलाव आ चुका है। अमेरिका के जो अश्वेत दास-प्रथा से मुक्त होने के सौ साल बाद भी दलितों से कहीं ज्यादा बदहाली में थे,1970 के दशक में वहां आंबेडकरी आरक्षण से उधार ली हुई सर्वव्यापी आरक्षण वाली डाइवर्सिटी पालिसी ने उनके जीवन में आश्चर्यजनक बदलाव ला दिया है। आज अमेरिका में सर्वत्र उनकी हिस्सेदारी दिख रही है। वे फिल्म और टीवी के सितारे हैं,वे बड़े-बड़े उद्योगपतियों में शुमार हैं : वे बड़ी-बड़ी कंपनियों के सीइओ हैं। नासा से लेकर हार्वर्ड और वालमार्ट से हॉलीवुड,जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जहां उनकी प्रभावी उपस्थिति न दिख रही हो। इस बीच उनके मध्य का ही एक व्यक्ति अमेरिका का प्रेसिडेंट तक बन चुका का है। जहाँ तक दक्षिण अफ्रीका के गोरों द्वारा शासित मंडेला के लोगों का सवाल है, 1994 में रंग-भेदी सत्ता के अवसान के बाद के दो दशकों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका प्रभुत्व स्थापित हो गया है। कभी जिन 9-10 प्रतिशत गोरों का वहां शक्ति के स्रोतों पर 80-90 प्रतिशत कब्जा हुआ करता था, आज वे तमाम क्षेत्रों में अपने सख्यानुपात पर सिमटते तथा इससे दुखी होकर वहां से पलायन करते जा रहे हैं। लेकिन भारत के बहुजनों की स्थिति अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका के कालों के मुकाबले अत्यंत कारुणिक है : उनमें नाममात्र का ही बदलाव आया है। आज भी हजारों साल पूर्व की भांति उद्योग व्यापार पर 80-90 प्रतिशत कब्जा वर्ण-व्यवस्था के विशेषाधिकारयुक्त तबकों का ही है। पूरे देश में आज जो असंख्य गगनचुम्बी भवन खड़े हुए हैं, उनमें 80-90 प्रतिशत फ्लैट्स उन्ही के हैं। पॉश कालोनियों में आज भी किसी दलित-आदिवासी-पिछड़े को वास करते देखना अचम्भे जैसा लगता है। मेट्रोपोलिटन शहरों से लेकर छोटे-छोटे कस्बों तक में छोटी-छोटी दुकानों से लेकर बड़े-बड़े शॉपिंग माल्स में 80-90 प्रतिशत से ज्यादा दुकानें इन्ही की हैं। चार से लेकर आठ-आठ लेन की सड़कों पर चमचमाती गाड़ियों का जो सैलाब नजर आता है, उनमे प्रायः 90 प्रतिशत से ज्यादा गाड़ियाँ उन्हीं की ही होती हैं। देश के जनमत निर्माण में लगे छोटे-बड़े अखबारों से लेकर तमाम चैनल उन्हीं के हैं। फिल्म और मनोरंजन उद्योग पर 90 प्रतिशत से ज्यादा कब्जा उन्हीं का है। संसद-विधानसभाओं में बहुजनों के जन प्रतिनिधियों की संख्या भले ही ठीक-ठाक हो, पर मत्रिमंडलों में दबदबा उन्हीं का है। मंत्रिमंडलों के लिए गए फैसलों को अमलीजामा पहनाने वाले प्रायः 80-90 प्रतिशत अधिकारी इन्हीं वर्गों से हैं। शासन-प्रशासन, उद्योग-व्यापार, फिल्म-मिडिया इत्यादि में जन्मजात सुविधाभोगी वर्ग का